International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
An International Quarterly bi-lingual Multidisciplinary Double Blind Open Access Peer Reviewed Refereed Journal
ISSN:2581-9925, Impact Factor (Cosmos: 7.555 & I2OR: 5.105), Volume 08, No. 03(I), July-September, 2026, pp. 148-157

राजस्थान में दलित सशक्तिकरण की दिशा में राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों की भूमिका का अध्ययन (2003 से 2023)

ओमप्रकाश[1*] | डॉ. गुलाम रसूल खान[2]

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, शोध केन्द्र, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
[2]शोध पर्यवेक्षक, आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

[*]Corresponding Author: om21686@gmail.com

Citation:ओमप्रकाश एवं खान, गुलाम (2026). राजस्थान में दलित सशक्तिकरण की दिशा में राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों की भूमिका का अध्ययन (2003 से 2023). International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 08(03(I)), 148–157.

सार

यह शोध राजस्थान में पिछले दो दशकों के दौरान दलित सशक्तिकरण को लेकर राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों की भूमिका को समझने की कोशिश करता है। अध्ययन का जोर परिणाम पर है, यानी सिर्फ यह नहीं कि कौन सी योजनाएं बनीं, बल्कि यह कि उनका असल में कितना फर्क पड़ा। पंचायती राज संस्थाओं, विधानसभा और लोकसभा में मिले आरक्षण से दलित समुदाय की राजनीतिक भागीदारी कैसे बदली, और शिक्षा, आवास, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा से जुड़ी योजनाओं ने इस समुदाय के उत्थान में क्या योगदान दिया, इन दोनों पहलुओं को साथ रखकर देखा गया है। द्वितीयक स्रोतों पर आधारित इस अध्ययन में सत्ता के पाँच बदलावों की तुलना करते हुए यह सामने आया कि राजनीतिक आरक्षण ने संख्या के हिसाब से प्रतिनिधित्व तो बढ़ाया है, लेकिन असली फैसले लेने की ताकत अभी भी सीमित है। वहीं कल्याणकारी योजनाओं का फायदा भी हर जगह और हर वर्ग तक बराबर नहीं पहुँचा है, महिलाओं और दूर–दराज के इलाकों में यह अंतर ज्यादा साफ दिखता है। अंत में सशक्तिकरण को ज्यादा समावेशी बनाने के लिए कुछ ठोस सुझाव दिए गए हैं।

शब्दकोश: *दलित सशक्तिकरण, राजनीतिक भागीदारी, कल्याणकारी नीतियाँ, राजस्थान, पंचायती राज, सामाजिक न्याय, आरक्षण।*

प्रस्तावना

भारतीय समाज में दलित वर्ग को सदियों से सामाजिक भेदभाव, आर्थिक शोषण और राजनीतिक बहिष्कार झेलना पड़ा है। आज़ादी के बाद संविधान बनाने वालों ने, खासकर डॉ. भीमराव अंबेडकर ने, इस समुदाय को न्याय दिलाने के लिए ठोस संवैधानिक इंतज़ाम किए। छुआछूत को अपराध घोषित किया गया और शिक्षा, नौकरी और राजनीति में आरक्षण की व्यवस्था बनाई गई। बाद में 73वें और 74वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज और नगरीय निकायों में भी दलितों के लिए सीटें आरक्षित कर दीं, जिससे सत्ता की पहुँच गाँव के स्तर तक हुई।

राजस्थान आबादी के लिहाज़ से भारत के बड़े राज्यों में गिना जाता है और यहाँ अनुसूचित जाति की आबादी कुल जनसंख्या का 17.83 प्रतिशत है (जनगणना 2011)। राजस्थान का सामाजिक ढांचा ऐतिहासिक रूप

* *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

से बेहद सामंती और जातिगत रहा है, इसी वजह से दलित समुदाय को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा है, एक तरफ सामाजिक बहिष्कार और दूसरी तरफ आर्थिक पिछड़ापन। ऐसे में यह देखना ज़रूरी हो जाता है कि पिछले दो दशकों में राजनीतिक भागीदारी और सरकारी योजनाओं ने इस समुदाय के सशक्तिकरण में कितनी और कैसी मदद की है।

2003 से 2023 का समय इस लिहाज़ से खास है क्योंकि इस दौरान राजस्थान में पाँच विधानसभा चुनाव हुए, सत्ता बार–बार एक दल से दूसरे दल के हाथ गई, और कई नई कल्याणकारी योजनाएं शुरू हुईं। सत्ता का यह लगातार बदलता रुख राजस्थान को एक तरह की स्वाभाविक तुलनात्मक प्रयोगशाला बना देता है, जहाँ अलग–अलग राजनीतिक दलों की प्राथमिकताओं को परखा जा सकता है। यह अध्ययन इसी नज़रिए से दलित सशक्तिकरण को परिणाम के आधार पर समझने की कोशिश करता है, यानी सिर्फ यह नहीं कि योजना कागज़ पर मौजूद है, बल्कि यह कि ज़मीन पर उसका क्या असर पड़ा।

सशक्तिकरण को समझने के लिए इसे कई पहलुओं से देखना ज़रूरी है। सामाजिक सशक्तिकरण का मतलब है भेदभाव और छुआछूत से आज़ादी और समाज में इज़्ज़त मिलना। आर्थिक सशक्तिकरण का मतलब है आमदनी, रोजगार और संपत्ति में बढ़ोतरी। और राजनीतिक सशक्तिकरण का मतलब है फैसले लेने की प्रक्रिया में असल भागीदारी, न कि सिर्फ नाम भर की मौजूदगी। ये तीनों पहलू एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, एक में हुई प्रगति दूसरे को भी आगे बढ़ाती है। राजस्थान को चुनने की एक वजह यह भी है कि यह राज्य भौगोलिक विविधता, सूखे और रेगिस्तानी इलाके और कम शहरीकरण के चलते बाकी राज्यों से अलग परिस्थितियाँ पेश करता है।

यह अध्ययन तीन वजहों से ज़रूरी हो जाता है। पहली वजह अकादमिक है, दलित राजनीति और आरक्षण नीति पर ज़्यादातर बड़े अध्ययन उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों पर केंद्रित रहे हैं, जहाँ बहुजन समाज पार्टी जैसी पहचान–आधारित पार्टियाँ मज़बूत रही हैं। राजस्थान, जहाँ दलित राजनीति मुख्यधारा की कांग्रेस–भाजपा दुध्रुवीय व्यवस्था के भीतर ही आगे बढ़ी है, अपेक्षाकृत कम अध्ययन किया गया राज्य है, और यही खाली जगह इस अध्ययन का केंद्र बिंदु है।

दूसरी वजह नीतिगत है। 2003 से 2023 के बीच राजस्थान में पाँच बार सरकार बदली, जिससे यह देखना संभव हो पाता है कि कल्याणकारी योजनाओं की बुनियादी संरचना पार्टी बदलने पर बदलती है या स्थिर रहती है, यह सवाल किसी भी राज्य में सामाजिक नीति की स्थिरता समझने के लिए अहम है। तीसरी वजह व्यावहारिक है, इस अध्ययन के निष्कर्ष सीधे तौर पर पंचायती राज संस्थाओं और कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सुधार के लिए काम आ सकते हैं, खासकर उन नीति–निर्माताओं और शोधार्थियों के लिए जो राजस्थान जैसे बड़े लेकिन अपेक्षाकृत कम अध्ययन किए गए राज्यों पर काम करना चाहते हैं।

सैद्धांतिक ढांचा

यह अध्ययन तीन विचारों पर टिका है। पहला, डॉ. अंबेडकर का यह मानना कि राजनीतिक ताकत ही सामाजिक बदलाव की कुंजी है, यानी जब तक वंचित तबके के हाथ में फैसला लेने की शक्ति नहीं आती, तब तक सामाजिक और आर्थिक असमानता खत्म नहीं हो सकती। दूसरा, प्रतिनिधित्व के दो रूप होते हैं, एक औपचारिक और एक असली। किसी समुदाय के लोगों का सत्ता के गलियारों में सिर्फ मौजूद होना काफी नहीं है, असली सशक्तिकरण तभी माना जाएगा जब उनकी मौजूदगी नीति और संसाधनों के बंटवारे पर सच में असर डाले। तीसरा, कल्याणकारी राज्य का यह सिद्धांत कि जिन समुदायों को इतिहास में नुकसान झेलना पड़ा है, उन्हें खास और लक्षित मदद देकर बराबरी का मौका बनाया जाना चाहिए।

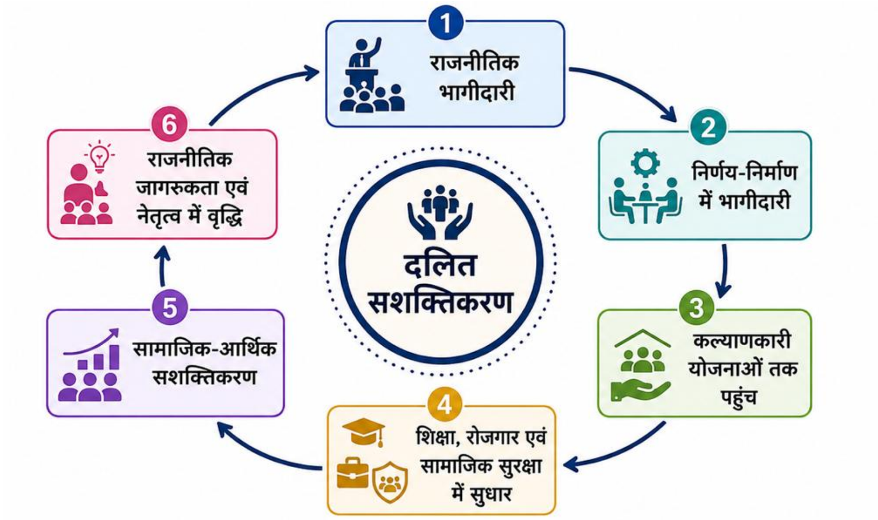

चित्र 1: दलित सशक्तिकरण का वैचारिक चक्र

इन तीनों बातों को साथ रखकर देखें तो साफ हो जाता है कि राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियाँ एक–दूसरे के बिना अधूरी हैं। बिना राजनीतिक भागीदारी के कल्याणकारी योजनाएं सिर्फ सरकार की मेहरबानी बनकर रह जाती हैं, और बिना कल्याणकारी नीतियों के राजनीतिक भागीदारी सिर्फ दिखावे तक सीमित रह जाती है। इसी रिश्ते को समझना इस अध्ययन का मूल मकसद है। इस ढांचे को चित्र के रूप में देखा जाए तो राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी लाभ के बीच एक चक्रीय रिश्ता बनता है, जहाँ हर तत्व दूसरे को बढ़ाता या घटाता है, न कि दोनों सीधी और अलग–अलग लकीरों में चलते हैं।

साहित्य समीक्षा

अंबेडकर ने अपनी किताब जाति का विनाश में साफ लिखा कि जब तक दलित समुदाय के हाथ में सीधी राजनीतिक ताकत नहीं आती, सामाजिक बराबरी का सपना अधूरा रहेगा। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए गेल आमवेड ने भारत में दलित आंदोलन के सामाजिक–राजनीतिक पहलुओं पर लिखा कि आरक्षण ज़रूरी तो है, लेकिन अकेले काफी नहीं। क्रिस्टोफ जाफरलो ने अपने अध्ययन में यह बात रखी कि उत्तर भारत के राज्यों में दलित राजनीति ने एक तरह की चुपचाप चलने वाली क्रांति का रूप ले लिया है, जिसमें पंचायती राज संस्थाओं का बड़ा हाथ रहा है, हालांकि हर राज्य में इसका असर अलग–अलग रहा है। कंचन चंद्रा ने बहुजन समाज पार्टी के उभार का विश्लेषण करते हुए दिखाया कि संरक्षण–आधारित लोकतंत्र में पहचान–आधारित पार्टियाँ किस तरह अपने समुदाय का समर्थन जुटाती हैं, जबकि राजनी कोठारी के संपादित संकलन में रिचर्ड सिसन का अध्याय खासतौर पर राजस्थान की जातिगत राजनीतिक गुटबंदी पर रोशनी डालता है।

कल्याणकारी नीतियों की बात करें तो सुखदेव थोराट ने सरकार की सामाजिक न्याय नीतियों का जायज़ा लेते हुए लिखा कि छात्रवृत्ति, आवास और भूमि आवंटन जैसी योजनाएं अक्सर प्रशासनिक सुस्ती और भ्रष्टाचार के चलते अपने मकसद से भटक जाती हैं। मार्क गैलेंटर के क्लासिक अध्ययन ने भारत में आरक्षण नीति के कानूनी एवं संवैधानिक इतिहास का विस्तृत विश्लेषण करते हुए बताया कि सकारात्मक भेदभाव नीति एक जटिल, निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है। ओलिवर मेंडेलसन और मारिका विक्ज़ियानी के अध्ययन ने यह दिखाया कि सरकारी प्रयासों के बावजूद अस्पृश्यता आधारित भेदभाव का ढांचा भारतीय समाज में गहराई तक बना हुआ है, जबकि आशविनी देशपांडे के आर्थिक विश्लेषण ने आधुनिक शहरी श्रम बाज़ार में भी जातिगत भेदभाव के जारी रहने के ठोस प्रमाण प्रस्तुत किए। विश्व बैंक की रिपोर्ट ने भी भारत में गरीबी और सामाजिक बहिष्कार का विश्लेषण करते हुए अनुसूचित जाति समुदाय को सबसे ज्यादा प्रभावित समूहों में गिना।

पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के प्रभाव पर सबसे प्रभावशाली अध्ययन राघबेंद्र चट्टोपाध्याय और एस्थर डफ्लो का माना जाता है, जो प्रतिष्ठित पत्रिका इकोनोमेट्रिका में 2004 में प्रकाशित हुआ। इस अध्ययन ने पश्चिम बंगाल के साथ–साथ राजस्थान के ही गाँव पंचायतों का यादृच्छिक आँकड़ा उपयोग करते हुए दिखाया कि जिन ग्राम पंचायतों में प्रधान का पद महिला के लिए आरक्षित रहा, वहाँ सार्वजनिक निवेश की प्राथमिकताएं महिलाओं की ज़रूरतों की ओर अधिक झुकीं। प्रियंका पांडेय और संदीप पांडेय के 2022 के अध्ययन ने उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति आरक्षण और स्कूल–सेवा वितरण के बीच के रिश्ते को परखा और पाया कि नतीजे इलाके के ऐतिहासिक भू–स्वामित्व ढांचे पर भी निर्भर करते हैं, यानी आरक्षण अकेले हमेशा एक जैसा असर नहीं डालता। यह अध्ययन इस बात का ठोस प्रमाण है कि आरक्षण नीति–निर्णयों को वास्तव में बदल सकती है, लेकिन उसका असर संदर्भ पर निर्भर करता है, जो हमारे इस शोध की केंद्रीय परिकल्पना से सीधे जुड़ता है।

इन सब अध्ययनों को देखकर यह साफ लगता है कि राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों के बीच के रिश्ते पर राजस्थान के विशिष्ट संदर्भ में एक समग्र अध्ययन अभी भी कम है। जहाँ उत्तर प्रदेश और बिहार पर काफी काम हुआ है, वहीं राजस्थान जैसे राज्य पर, जहाँ दलित राजनीति मुख्यधारा के दलों के भीतर से ही आगे बढ़ी है, समग्र और समयबद्ध अध्ययन की कमी है। यही कमी यह शोध पूरी करने की कोशिश करता है।

शोध उद्देश्य

इस अध्ययन के कुछ मुख्य मकसद हैं। पहला मकसद यह देखना है कि 2003 से 2023 के बीच राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं, विधानसभा और लोकसभा में दलित समुदाय की राजनीतिक भागीदारी किस तरह बदली। दूसरा, इसी दौरान राज्य और केंद्र सरकार की मुख्य कल्याणकारी योजनाओं और उनके क्रियान्वयन को परखना। तीसरा, राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों के बीच के रिश्ते और दलित सशक्तिकरण पर उनके साझा असर को समझना। और आखिर में, इस प्रक्रिया में आ रही अड़चनों की पहचान कर व्यावहारिक नीतिगत सुझाव देना।

शोध प्रविधि

यह अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक तरीके पर आधारित है, जिसमें पूरी तरह द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है। आंकड़ों के लिए भारत के चुनाव आयोग की रिपोर्टें, जनगणना 2011, राजस्थान के सामाजिक न्याय विभाग की वार्षिक रिपोर्टें, नीति आयोग के दस्तावेज़, राजस्थान की आर्थिक समीक्षा और इससे जुड़ी शोध पत्रिकाओं और किताबों का सहारा लिया गया है। अध्ययन की समय–सीमा 2003 से 2023 इसलिए रखी गई है क्योंकि इस दौरान राजस्थान में सत्ता लगातार बदलती रही, जिससे अलग–अलग सरकारों की प्राथमिकताओं की तुलना करना मुमकिन हो पाता है।

विश्लेषण की दो मुख्य इकाइयाँ रखी गई हैं। पहली, राजनीतिक भागीदारी को मापने के लिए पंचायती राज, विधानसभा और लोकसभा में दलित प्रतिनिधित्व के आँकड़े और मंत्रिमंडल में हिस्सेदारी को आधार बनाया गया है। दूसरी, कल्याणकारी नीतियों के असर को मापने के लिए योजनाओं का दायरा, बजट आवंटन बनाम खर्च, और उपलब्ध द्वितीयक आँकड़ों में दर्ज लाभार्थियों की संख्या को आधार बनाया गया है। विश्लेषण मुख्य रूप से गुणात्मक और तुलनात्मक तरीके से किया गया है, जहाँ मौजूद आंकड़ों की व्याख्या करते हुए रुझानों को समझने की कोशिश की गई है, और जहाँ संभव हुआ वहाँ सरकार–दर–सरकार तुलना भी दी गई है।

राजस्थान में दलित समुदाय की पृष्ठभूमि

जनगणना 2011 के मुताबिक राजस्थान की कुल आबादी में अनुसूचित जाति की हिस्सेदारी 17.83 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की हिस्सेदारी 13.48 प्रतिशत है, और अनुसूचित जाति समुदाय श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, भरतपुर, धौलपुर और अलवर जैसे जिलों में ज्यादा संख्या में रहता है। मेघवाल, बैरवा, कोली, बलाई,

चमार और भांबी जैसी जातियाँ राज्य में मुख्य अनुसूचित जातियों में गिनी जाती हैं। राजस्थान की जातिगत बनावट ऐतिहासिक रूप से राजपूताना रियासतों की सामंती व्यवस्था से गहरे तक प्रभावित रही है, जिसकी वजह से दलित समुदाय को ज़मीन के मालिकाना हक, शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में लंबे समय तक हाशिये पर रखा गया। आज़ादी के बाद संविधान ने रास्ता तो बनाया, लेकिन समाज की सोच बदलने की रफ्तार काफी धीमी रही है, यह बात आज भी छुआछूत की घटनाओं, अत्याचार के मामलों और सामाजिक बहिष्कार की खबरों में दिखती है।

आर्थिक तौर पर भी दलित समुदाय की हालत चिंता की बात रही है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के अलग–अलग सर्वे बताते हैं कि राजस्थान में अनुसूचित जाति के परिवारों में भूमिहीनता आम वर्ग के मुकाबले काफी ज्यादा है, और इस समुदाय के ज़्यादातर लोग असंगठित क्षेत्र, दिहाड़ी मजदूरी या फिर परंपरागत रूप से नीचा समझे जाने वाले कामों जैसे चमड़े का काम, सफाई और मरे हुए जानवरों को ठिकाने लगाने जैसे कामों में लगे हैं। शहरीकरण और शिक्षा बढ़ने के साथ इसमें धीरे–धीरे बदलाव ज़रूर आया है, खासकर युवा पीढ़ी में सरकारी और निजी क्षेत्र की नौकरियों की तरफ रुझान बढ़ा है, लेकिन समाज में पूरी तरह घुल–मिल पाने की प्रक्रिया अभी भी अधूरी मानी जाती है।

राजनीतिक भागीदारीः रुझान और विश्लेषण

73वें संविधान संशोधन के बाद राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति के लिए आबादी के हिसाब से सीटें आरक्षित की गई हैं। इस वजह से पिछले दो दशकों में हज़ारों दलित पुरुष और महिला प्रतिनिधि सरपंच, पंचायत समिति सदस्य और जिला परिषद सदस्य के रूप में चुने गए हैं। यह तीन–स्तरीय व्यवस्था ज़मीनी स्तर पर राजनीतिक समझ और नेतृत्व क्षमता बढ़ाने का एक अहम ज़रिया साबित हुई है। लेकिन कई इलाकों में यह भी देखा गया है कि चुने गए दलित सरपंचों को असली प्रशासनिक ताकत इस्तेमाल करने ही नहीं दी जाती, उन्हें ताकतवर सामाजिक समूहों के दबाव में काम करना पड़ता है, खासकर उन ग्राम पंचायतों में जहाँ सरपंच का पद महिला या दलित वर्ग के लिए आरक्षित होता है।

राजस्थान विधानसभा की कुल 200 सीटों में से 34 सीटें अनुसूचित जाति और 25 सीटें अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित हैं। यह ढांचा भारत निर्वाचन आयोग के परिसीमन आदेश 2008 के बाद से लगातार लागू है और 2008, 2013, 2018 एवं 2023, चारों विधानसभा चुनावों में यही आँकड़ा रहा है। 2003 का चुनाव इससे पहले के परिसीमन (1976) के आधार पर हुआ था, जिसमें सीटों की कुल संख्या तो 200 ही थी, पर आरक्षित सीटों का सटीक ब्योरा सार्वजनिक रूप से आसानी से सत्यापित नहीं हो पाया, इसलिए इस अध्ययन में उसे अनुमानित नहीं किया गया है।

तालिका 1: राजस्थान विधानसभा (200 सीटें) की श्रेणीवार संरचना

श्रेणी	सीटों की संख्या	कुल का प्रतिशत
सामान्य सीटें	141	70.5%
अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित	34	17.0%
अनुसूचित जनजाति हेतु आरक्षित	25	12.5%
कुल	200	100%

स्रोतः Delimitation of Parliamentary and Assembly Constituencies Order, 2008, भारत निर्वाचन आयोग। यह संरचना 2008, 2013, 2018 एवं 2023 के विधानसभा चुनावों में लागू रही (2023 हेतु पुनः पुष्टिः भारत निर्वाचन आयोग प्रेस नोट ECI/PN/57/2023, दिनांक 9 अक्टूबर 2023)।

बहरहाल, 2008 के बाद से हर चुनाव में इन आरक्षित सीटों पर दलित प्रतिनिधि ही निर्वाचित होते रहे हैं, जिससे विधानसभा में दलित समुदाय की मौजूदगी संख्या के हिसाब से पक्की हुई है। कांग्रेस और भाजपा, दोनों बड़ी पार्टियों ने समय–समय पर दलित नेताओं को मंत्रिमंडल में जगह भी दी है, जिससे मंत्री स्तर के

फैसलों में भी दलित प्रतिनिधित्व की झलक दिखी। बहुजन समाज पार्टी ने भी इस दौरान राजस्थान की कुछ सीटों पर अपनी मौजूदगी दर्ज कराई, खासकर पूर्वी राजस्थान के जिलों में, हालांकि उसकी सीटों की संख्या सीमित ही रही।

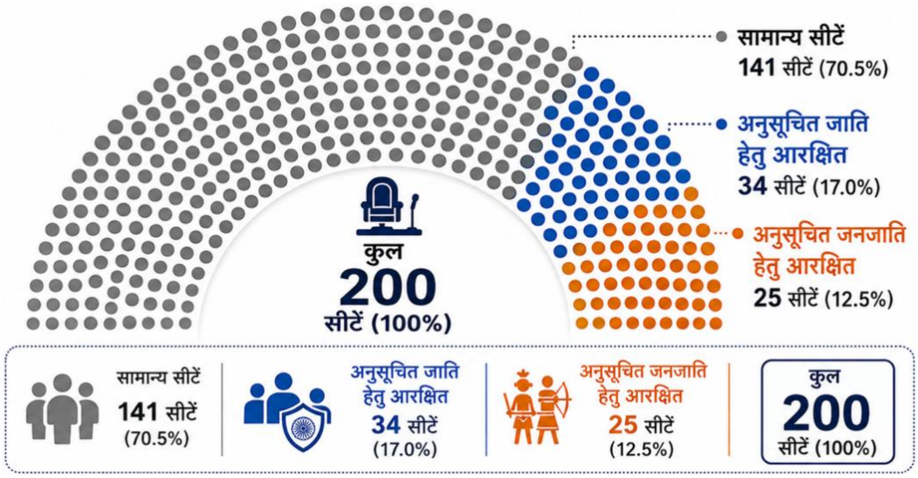

चित्र 1: राजस्थान विधानसभा की श्रेणीवार सीट संरचना

नोटः 2003 का विधानसभा चुनाव इससे पूर्व के परिसीमन (1976) के आधार पर हुआ था, जिसमें आरक्षित सीटों की सटीक संख्या का सार्वजनिक रूप से सुलभ एवं सत्यापन–योग्य आँकड़ा इस अध्ययन हेतु उपलब्ध नहीं हो सका, अतः उसे यहाँ सम्मिलित नहीं किया गया है। लोकसभा स्तर पर राजस्थान की 25 सीटों में से 4 सीटें अनुसूचित जाति हेतु आरक्षित हैं।

2003 से 2008 के दौर में सत्ता में रही सरकार ने प्रशासनिक सुधार और बुनियादी ढांचे के विकास पर ज़ोर दिया, इस दौरान दलित कल्याण की योजनाएं सीमित दायरे में लेकिन स्थिर रहीं। 2008 से 2013 के बीच सत्ता बदली और सामाजिक सुरक्षा और अधिकार आधारित योजनाओं पर ज्यादा ध्यान गया, जिसमें रोजगार गारंटी और खाद्य सुरक्षा जैसी बातें अहम रहीं। 2013 से 2018 के दौर में फिर सत्ता बदली और डिजिटल तरीके से सीधे लाभ पहुँचाने की दिशा में बड़े कदम उठाए गए, जिससे योजनाओं के वितरण में पारदर्शिता बढ़ी। 2018 से 2023 के दौरान स्वास्थ्य बीमा और सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजनाओं का दायरा बढ़ाया गया। इस तुलना से एक बात साफ दिखती है कि पार्टियों की विचारधारा भले अलग रही हो, दलित कल्याण के मूल ढांचे में काफी हद तक निरंतरता बनी रही, बस प्राथमिकताएं और लागू करने का तरीका बदलता रहा।

राजस्थान की 25 लोकसभा सीटों में से चार सीटें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं। इस दौरान हुए सभी आम चुनावों में इन सीटों से चुने गए सांसदों ने केंद्रीय स्तर पर भी दलित मुद्दे उठाने की कोशिश की। यह बात भी गौर करने लायक है कि इस दौरान राजस्थान से एक दलित नेता को केंद्रीय मंत्रिमंडल में अहम विभाग भी मिला, जिसे प्रतीकात्मक सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक संकेत माना जा सकता है।

आरक्षित सीटों से हटकर देखें तो पार्टी के भीतरी ढांचे में दलित नेताओं की भागीदारी काफी सीमित ही रही है। पार्टी अध्यक्ष, प्रदेश महामंत्री या बड़ी नीति बनाने वाली समितियों में दलित प्रतिनिधित्व अभी भी उतना नहीं है जितना होना चाहिए। यह बात यही दिखाती है कि चुनावी राजनीति में संख्या के हिसाब से मौजूदगी और असल फैसले लेने की ताकत, इन दोनों में अभी भी बड़ा फर्क है।

गाँवों की तरह राजस्थान की नगर पालिकाओं, नगर परिषदों और नगर निगमों में भी अनुसूचित जाति के लिए वार्ड स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था है। जयपुर, जोधपुर, कोटा, बीकानेर और अजमेर जैसे बड़े शहरों में दलित पार्षदों की मौजूदगी ने शहरी नीति बनाने में भी सामाजिक न्याय के मुद्दे उठाने का मौका दिया है। फिर

भी शहरी इलाकों में दलित बस्तियों में पानी, सीवरेज और सड़क जैसी बुनियादी सुविधाओं की हालत दूसरे वार्डों के मुकाबले कमजोर ही पाई जाती है, जो बताता है कि प्रतिनिधित्व होने के बावजूद संसाधनों का बराबर बंटवारा अभी भी एक चुनौती है।

दलित महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी का सवाल यहाँ अलग से ध्यान माँगता है। पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण और अनुसूचित जाति आरक्षण, दोनों साथ मिलकर बड़ी संख्या में दलित महिलाओं को सरपंच और वार्ड पंच बनाने में मदद करते हैं। यह बिना शक एक अच्छा बदलाव है, लेकिन कई जगह के अध्ययन यह भी बताते हैं कि असली प्रशासनिक काम चुनी गई महिला प्रतिनिधि के पति या परिवार का कोई पुरुष सदस्य ही संभालता है, जिसे आमतौर पर प्रतिनिधि–प्रतिस्थापन कहा जाता है। चट्टोपाध्याय और डफ्लो के अध्ययन में राजस्थान की ग्राम पंचायतों से मिले आँकड़े यह भी दिखाते हैं कि महिला आरक्षण से खर्च की प्राथमिकताएं बदलती ज़रूर हैं, लेकिन यह बदलाव तभी टिकाऊ होता है जब आरक्षण को क्षमता–निर्माण की व्यवस्था का साथ मिले। यह चलन दलित महिलाओं के सशक्तिकरण की असली गुणवत्ता पर सवाल खड़ा करता है और यह बताता है कि सिर्फ सीटें आरक्षित कर देना काफी नहीं, क्षमता बढ़ाने और जागरूकता फैलाने के कार्यक्रम भी उतने ही ज़रूरी हैं।

कल्याणकारी नीतियाँः रुझान और विश्लेषण

राजस्थान सरकार ने अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए पूर्व–मैट्रिक और उत्तर–मैट्रिक छात्रवृत्ति योजनाएं चलाई हैं, ताकि स्कूल और उच्च शिक्षा में आ रही सामाजिक–आर्थिक रुकावटें कम हो सकें। इसके साथ ही अनुप्रति योजना के ज़रिए प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए पैसा दिया जाता है और अंबेडकर छात्रावास योजना के तहत मुफ्त रहने की सुविधा मिलती है। पालनहार योजना अनाथ और ज़रूरतमंद दलित बच्चों की परवरिश के लिए सीधे उनके खाते में पैसा भेजती है। इन योजनाओं ने पिछले दो दशकों में दलित समुदाय में साक्षरता और उच्च शिक्षा में दाखिले बढ़ाने में मदद की है, हालांकि स्कूल बीच में छोड़ने की दर अभी भी आम वर्ग के मुकाबले ज्यादा बनी हुई है।

इंदिरा गांधी आवास योजना और बाद में प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण के तहत भूमिहीन और बेघर दलित परिवारों को पक्के मकान दिए गए। देवनारायण योजना और ज़मीन आवंटन से जुड़े प्रावधानों के ज़रिए भूमिहीन दलित परिवारों को खेती या रहने के लिए ज़मीन पट्टे पर देने की कोशिश हुई, हालांकि ज़मीन के कागज़ात की उलझन और स्थानीय स्तर पर विरोध की वजह से यह हर जगह एक जैसे तरीके से लागू नहीं हो पाई।

मनरेगा ने गाँव के दलित परिवारों को स्थानीय स्तर पर काम दिलाया, जिससे मौसमी पलायन में कुछ कमी आई। इसके अलावा अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम के ज़रिए खुद का काम शुरू करने के लिए कर्ज़ की सुविधा और अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत बजट का एक तय हिस्सा दलित कल्याण के लिए रखा गया। लेकिन राजस्थान की आर्थिक समीक्षा रिपोर्टों में बार–बार यह बात सामने आई है कि उपयोजना का पैसा पूरा खर्च ही नहीं हो पाता, जिससे इन योजनाओं का असली फायदा सीमित रह जाता है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण कानून को ठीक से लागू करने के लिए राजस्थान में खास अदालतें बनाई गईं और पीड़ितों को आर्थिक मदद और पुनर्वास की व्यवस्था की गई। इसके बावजूद राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि राजस्थान में दलितों के खिलाफ अत्याचार के मामलों की संख्या चिंताजनक रूप से बनी रही है, यानी कानून होने के बावजूद समाज में भेदभाव की जड़ें अभी भी गहरी हैं।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन और राज्य सरकार की मुफ्त दवा और जाँच योजनाओं का फायदा दलित परिवारों तक भी पहुँचाने की कोशिश हुई है। स्वास्थ्य बीमा योजना ने आर्थिक रूप से कमजोर दलित परिवारों को गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए सुरक्षा दी। आंगनवाड़ी केंद्रों के ज़रिए दलित बस्तियों में पोषण और

शुरुआती शिक्षा के कार्यक्रम भी चलाए गए, हालांकि दूर–दराज़ और ढाणी वाले इलाकों में इन केंद्रों तक पहुँचना आज भी मुश्किल है।

परंपरागत रूप से सफाई के काम से जुड़े दलित उपसमूहों के लिए पुनर्वास योजना और राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त एवं विकास निगम के ज़रिए दूसरे तरह के रोजगार और कौशल प्रशिक्षण देने की कोशिश हुई है। इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है, लेकिन हाथ से मैला ढोने की प्रथा पूरी तरह खत्म नहीं हो पाई है, खासकर छोटे शहरी निकायों और गाँवों में सीवर और सेप्टिक टैंक साफ करते वक्त होने वाली दुर्घटनाएं सामने आती रही हैं, जो बताती है कि इस समुदाय का सबसे कमजोर हिस्सा आज भी सबसे ज्यादा जोखिम में है।

सशक्तिकरण की राह में आ रही मुख्य चुनौतियाँ

ऊपर के विश्लेषण से कुछ ढांचागत चुनौतियाँ साफ नज़र आती हैं जो राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों का असर कम कर देती हैं। एक बड़ी समस्या है क्षमता की कमी, जहाँ कई ग्राम पंचायतों और नगरीय निकायों में प्रशिक्षित स्टाफ और तकनीकी संसाधनों की कमी योजनाओं को समय पर लागू करने में रुकावट डालती है। दूसरी समस्या है सामाजिक विरोध, जहाँ ताकतवर सामाजिक समूह दलित जनप्रतिनिधियों को फैसले लेने की प्रक्रिया से बाहर रखने की कोशिश करते हैं, कभी–कभी सामाजिक बहिष्कार या हिंसा के ज़रिए भी। तीसरी समस्या है जानकारी और जागरूकता की कमी, जिसकी वजह से कई पात्र लाभार्थी योजनाओं का फायदा उठा ही नहीं पाते, खासकर वे परिवार जो पढ़े–लिखे नहीं हैं या दूर–दराज़ इलाकों में रहते हैं।

एक और बड़ी दिक्कत बजट से जुड़ी है। अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत मिलने वाले पैसे का समय पर और पूरा इस्तेमाल न हो पाना बार–बार दोहराई जाने वाली समस्या रही है, जिसकी वजह प्रशासनिक देरी, योजना मंज़ूर होने की जटिल प्रक्रिया और अलग–अलग विभागों के बीच तालमेल की कमी बताई जाती है। और आखिर में, आंकड़ों की उपलब्धता और पारदर्शिता की भी समस्या है। दलित कल्याण योजनाओं के असर को ठीक से परखने के लिए जिला और ब्लॉक स्तर पर भरोसेमंद और आसानी से मिलने वाले आंकड़ों की कमी है, जिससे शोधकर्ताओं और नीति–विश्लेषकों के लिए सबूत के आधार पर मूल्यांकन करना मुश्किल हो जाता है।

राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों का साझा असर

ऊपर की चर्चा से यह साफ हो जाता है कि राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियाँ एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। जहाँ दलित जनप्रतिनिधियों की मौजूदगी मजबूत रही है, वहाँ योजनाओं के लागू होने के नतीजे भी बेहतर देखे गए हैं, क्योंकि स्थानीय प्रतिनिधि योजनाओं की जानकारी फैलाने और लाभार्थियों तक पहुँच बनाने में मदद करते हैं। इसके उलट जहाँ राजनीतिक भागीदारी सिर्फ कागज़ी रह गई, वहाँ योजनाओं का फायदा अक्सर ताकतवर तबकों ने ही समेट लिया। इससे यह कहा जा सकता है कि सशक्तिकरण की प्रक्रिया सीधी लकीर में नहीं चलती, बल्कि राजनीतिक ताकत और आर्थिक–सामाजिक फायदे के बीच एक चक्र सा बना रहता है, जहाँ एक चीज़ की मौजूदगी दूसरी को मजबूत करती है और एक की कमजोरी दूसरी को भी सीमित कर देती है।

यह भी गौर करने लायक है कि पिछले दो दशकों में शिक्षा और आर्थिक हालात के मामले में दलित समुदाय ने अच्छी प्रगति की है, लेकिन यह प्रगति राज्य के अंदर भौगोलिक और लैंगिक आधार पर एक जैसी नहीं रही। शहरी इलाकों और राजनीतिक रूप से सक्रिय जिलों में सशक्तिकरण की रफ्तार तेज़ रही, जबकि दूर–दराज़ और आदिवासी बहुल इलाकों के आसपास यह रफ्तार धीमी ही रही। कोरोना महामारी के दौरान भी यह देखने को मिला कि दलित दिहाड़ी मजदूरों और प्रवासी श्रमिकों को सबसे ज्यादा आर्थिक नुकसान झेलना पड़ा, जिसके जवाब में सरकार ने मनरेगा के तहत काम के दिन बढ़ाए और अनाज बांटने की योजनाओं का दायरा भी बढ़ाया, जो दिखाता है कि मुश्किल वक्त में भी कल्याणकारी ढांचा एक ज़रूरी सुरक्षा–कवच का काम करता है।

निष्कर्ष और सुझाव

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थान में 2003 से 2023 के बीच दलित सशक्तिकरण की दिशा में अच्छी लेकिन असमान प्रगति हुई है। राजनीतिक आरक्षण ने संख्या के हिसाब से प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने में तो कामयाबी पाई है, लेकिन असली फैसले लेने की ताकत में दलित समुदाय की हिस्सेदारी अभी भी सीमित है। कल्याणकारी नीतियों ने शिक्षा, आवास और रोजगार के मामले में सकारात्मक बदलाव लाने में योगदान दिया है, लेकिन बजट का पूरा इस्तेमाल न होना, प्रशासनिक सुस्ती और सामाजिक विरोध जैसी दिक्कतों की वजह से इनका पूरा फायदा समुदाय तक नहीं पहुँच पाया है। इस विश्लेषण से अध्ययन की दोनों परिकल्पनाएं सही साबित होती दिखती हैं।

इन नतीजों के आधार पर कुछ सुझाव दिए जा सकते हैं। सबसे पहले, पंचायती राज संस्थाओं में चुने गए दलित प्रतिनिधियों को असली प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार दिए जाएं, और उन पर पड़ने वाले सामाजिक दबाव को रोकने के लिए सख्त कानूनी इंतज़ाम हों। दूसरा, अनुसूचित जाति उपयोजना का पैसा समय पर और पूरा खर्च हो, इसके लिए एक स्वतंत्र निगरानी व्यवस्था बनाई जाए। तीसरा, राजनीतिक पार्टियों के भीतरी ढांचे में भी दलित नेतृत्व को बढ़ावा दिया जाए, ताकि चुनावी आरक्षण से आगे बढ़कर नीति बनाने में भी असली भागीदारी मिल सके। चौथा, अत्याचार निवारण कानून को सही तरीके से लागू करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया को तेज़ और आसान बनाया जाए। पाँचवां, प्रतिनिधि–प्रतिस्थापन जैसी प्रवृत्तियों पर लगाम लगाने के लिए दलित महिला प्रतिनिधियों के लिए क्षमता बढ़ाने और नेतृत्व सिखाने के कार्यक्रम ज़रूर चलाए जाएं। और आखिर में, सशक्तिकरण के भौगोलिक और लैंगिक असंतुलन को दूर करने के लिए दूर–दराज़ के इलाकों और दलित महिलाओं पर खास ध्यान देने वाले कार्यक्रम शुरू किए जाएं, साथ ही जिला और ब्लॉक स्तर पर योजनाओं के असर को नियमित रूप से, पारदर्शी तरीके से और सबकी पहुँच में रखते हुए परखा जाए। कुल मिलाकर कहा जाए तो राजनीतिक भागीदारी और कल्याणकारी नीतियों के बीच बेहतर तालमेल बनाकर ही राजस्थान में दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया को ज्यादा समावेशी, टिकाऊ और सार्थक बनाया जा सकता है। यही कोशिश आने वाले सालों में समतामूलक समाज के संवैधानिक सपने को हकीकत में बदलने की तरफ एक ठोस कदम साबित हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अंबेडकर, बी. आर., एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, स्वप्रकाशित, 1936।
2. ओमवेड, गेल, दलित विज़न्सः द एंटी–कास्ट मूवमेंट एंड द कंस्ट्रक्शन ऑफ एन इंडियन आइडेंटिटी, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन 1995, संशोधित संस्करण 2006।
3. जाफरलो, क्रिस्टोफ, इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशनः द राइज़ ऑफ द लो कास्ट्स इन नॉर्थ इंडियन पॉलिटिक्स, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2003।
4. थोराट, सुखदेव, दलित्स इन इंडियाः सर्च फॉर अ कॉमन डेस्टिनी, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009।
5. गुहा, रामचंद्र, इंडिया आफ्टर गांधीः द हिस्ट्री ऑफ द वल्ड्र्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी, पिकाडोर इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन 2007।
6. गैलेंटर, मार्क, कम्पीटिंग इक्वलिटीज़ः लॉ एंड द बैकवर्ड क्लासेज़ इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1984 (भारतीय संस्करणः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली)।
7. देशपांडे, आशविनी, द ग्रामर ऑफ कास्टः इकोनॉमिक डिस्क्रिमिनेशन इन कंटेम्पररी इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2011।

8. मेंडेलसन, ऑलिवर एवं विक्ज़ियानी, मारिका, द अनटचेबल्सः सबऑर्डिनेशन, पॉवर्टी एंड द स्टेट इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1998।

9. शाह, घनश्याम (संपादक), दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001।

10. चट्टोपाध्याय, राघबेंद्र एवं डफ्लो, एस्थर, 'विमेन एज़ पॉलिसी मेकर्सः एविडेंस फ्रॉम अ रैंडमाइज़्ड पॉलिसी एक्सपेरिमेंट इन इंडिया', इकोनोमेट्रिका, खंड 72, अंक 5, पृष्ठ 1409–1443, सितंबर 2004।

11. हसन, जोया, पॉलिटिक्स ऑफ इनक्लूज़नः कास्ट्स, माइनॉरिटीज़ एंड अफर्मेटिव एक्शन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2009।

12. चंद्रा, कंचन, व्हाय एथनिक पार्टीज़ सक्सीडः पैट्रोनेज एंड एथनिक हेड काउंट्स इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2004।

13. जायल, निराजा गोपाल, रिप्रेजेंटिंग इंडियाः एथनिक डायवर्सिटी एंड द गवर्नेंस ऑफ पब्लिक इंस्टिट्यूशन्स, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 2006।

14. कोठारी, राजनी (संपादक), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, 1970 (इसमें रिचर्ड सिसन का अध्याय 'कास्ट एंड पॉलिटिकल फैक्शन्स इन राजस्थान' सम्मिलित है)।

15. बेली, सूज़न, कास्ट, सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया फ्रॉम द एटींथ सेंचुरी टू द मॉडर्न एज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1999।

16. पांडेय, प्रियंका एवं पांडेय, संदीप, 'पॉलिटिकल रिज़र्वेशन्स एंड सर्विस डिलीवरी इन विलेज गवर्नमेंट', इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 57, अंक 28, 9 जुलाई 2022।

17. विश्व बैंक, पॉवर्टी एंड सोशल एक्सक्लूज़न इन इंडिया, वाशिंगटन डी.सी., 2011।

18. पई, सुधा, दलित असर्शन एंड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशनः द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002।

19. भारत सरकार, जनगणना 2011, भारत के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली (राजस्थान हेतु अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति जनसंख्या आँकड़े)।

20. भारत निर्वाचन आयोग, परिसीमन आदेश 2008 (डेलिमिटेशन ऑफ पार्लियामेंट्री एंड असेंबली कॉन्स्टिट्यूएंसीज़ ऑर्डर, 2008), नई दिल्ली।

21. भारत निर्वाचन आयोग, प्रेस नोट सं. ईसीआई/पीएन/57/2023, दिनांक 9 अक्टूबर 2023 (छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, मिजोरम, राजस्थान एवं तेलंगाना विधानसभाओं की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आरक्षित सीटों संबंधी विवरण)।

❑❑❑